International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 20-04-2019; Accepted: 21-05-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 4; July 2019; Page No. 45-47

समकालीन हिन्दी कविता: उत्तर आधुनिकता के सन्दर्भ मे

डॉ० पार्वती जे० गोसाई

आसि. प्रोफेसर, हिन्दी स्नातकोत्तर विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, आणंद, गुजरात, भारत।

प्रस्तावना

"कुछ नया जो रुढ़ियों को तोड़ दे
कुछ नया: परिवर्तनों की माँग हो
कुछ नया: नव की नयी अनुभूति हो
कुछ नया: निर्माण की बातें करें
नारी-पथ विशि में सृजन की मोड़ दें
पीढ़ियों को पीढ़ियों से जोड़ दे।"[१]

आज जब एक 'आईडिया' सबकी जिन्दगी बदल देने का दावा कर रहा है, कर लो दुनिया मुठ्ठी में के सूत्र पर नवपीढी आगे बढ़ रही है और 'सफेद ही पवित्र होता है' के नाम पर गोरा होने की होड में काले को अपवित्र व अछूत माना जा रहा है तब साहित्य ही वह माध्यम है जो इस तरह की घोर निराशाजनक मानसिकता से हमें छूटकारा दिलाकर आधुनिकता व अनुआधुनिकता के इस दौर से हमें सुबुद्धि व सुविचार दे सकता है। 'नव' और 'नवं' के पीछे आज समूचा विश्व एक अलग ही समय में जी रहा हैं। इस समय को 'उत्तर आधुनिकता' भी कह सकते हैं। भारत इससे अछूता नहीं है। साहित्य भी इससे अनजान नहीं है। साहित्य ने इसे विभिन्न स्तरों पर अपनाया है। उत्तर आधुनिकता एक चुनौतीपूर्ण विषय है जिसकी व्युत्पत्ति, नामकरण, समय-निर्धारण या स्वरुप विवेचन के सन्दर्भ में विद्वान भले ही एक मत न हो, पर आज समूचे विश्व को हलने जिस विभिन्न कोणों से प्रभावित या ग्रसीत कर रखा है इससे इसको नज़रंदाज करना मुर्खता ही होगी। आधुनिकता की भाँति उत्तर आधुनिकता पश्चिम के समाज और दर्शन की एक इतिहास यात्रा है। इसे समझे बिना हम न तो अपने समय को समझ सकते है और ना ही इससे प्रेरीत साहित्य-काव्य को। १९७० में पश्चिम में जोर शोर से उत्तर आधुनिकता का विचार छाया था और में जब वहाँ यह पुराना हो गया तब जाके भारत में इसकी चर्चा हुई। मतलब यही कि साहित्य में तो काफी बाद में उत्तर-आधुनिकता के सन्द्रभ देखने को मिलें।

जर्मन लेखक आर्नोल्ड टोयनबी ने अपनी पुस्तक-'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' में सन् १९५० से १९७५ के बीच आधुनिक युग की समाप्ति की घोषणा में 'उत्तर आधुनिकता' शब्द प्रयोग किया। उन्होंने उत्तर-आधुनिकता के आविर्भाव की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए बताया है कि उत्तर आधुनिकता तब शुरु होती है जब कई अर्थो में अपने जीवन, विचार एवं भावनाओं में तार्किकता एवं संगति हटने लगती है तथा डायनीसियन, अतार्किकता एवं असंगतियाँ जड़ जमाने लगती है। उनके अनुसार उत्तर आधुनिकता की चेतना में विगत के प्रतिमानों को विस्तृत करने का सक्रिय उत्साह है। एक प्रकार से इसे साभिप्राय एवं स्वप्रेरित स्मृति का लोप माना जाता हैं। इसके बाद हुडली, किट्स, इहां हसन, ज्ञान बार्थ, डेनियल ब्रेल, ब्रोदेलो, ल्योतार, देरिदा, फेड्रिक, फूको आदि ने उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन को विभिन्न क्षेत्रों, स्तरों तक चिंतन का विषय बनाकर अपने-अपने मत रखे।

भारत में उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव पहले आर्थिक रुप से बाजारीकरण, उपभोक्तावादी समाज से आया। राजनीतिक स्तर पर यह चुनावी लुभावने वादों और नवीनीकरण की आड में विभिन्न योजनाओं में मतदाताओं को ग्रस्त करता हुआ आया। समाज में इसे सीधे-सीधे अपना लिया। उसे खूद पता ही नहीं चला कि कब वह उत्तर-आधुनिकता के ग्लोबल, खेल में शरीक् हुआ। आज दृश्य यह बना है कि इस भूमण्डलीय अवस्था में हम सब का बोध ले रहा हैं और हमारे सभी सांस्कृतिक, ज्ञानात्मक प्रतीक बाजारवाद में बिकने को तैयार खड़े है। संक्षेप में यही कि हर क्षेत्र में उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव इस ढंग से बढ़ गया है कि फिल्म, फैशन, विचार, विज्ञापन, राजनीति, संस्कृति, इतिहास, धर्म, दर्शन, कला, मीडिया सब इससे बचकर बरकरारर नहीं रह सकते, तब साहित्य इससे अछूता कैसे भला रह सकता था। भारतीय साहित्य खास कर हिन्दी समकालीन काव्य की दृष्टि से अगर देखें तो उत्तर-आधुनिकता का चित्र इसमें बखूबी व यथार्थ रुप में उभरा है।

समकालीन हिन्दी काव्य वैश्वीकरण, बाजारीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति, भ्रष्ट राजनीति, गिरते नैतिक मानवमूल्य, जातीय विद्वेष, नगरीय व ग्रामीण सभ्यता की संघर्षशीलता, नारी व दलितों शोषितों के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार, असंगत न्याय, न्याय प्रणालियों तथा सामाजिक, आर्थिक ढाँचें मे शोषक वर्ग के चरित्रों व समलैंगिग या सेक्सेरियन बिहेव की यथार्थता आदि का अत्यंत बारीकी से उद्घाटन करती हुई अपने समय सापेक्षाता का उदाहरण देती हैं।

विगत सदी के पिछले तीन दशकों में जिस प्रकार तेजी से तकनीकी क्रान्ति, आर्थिक उदारीकरण, बाज़ारीकरण तथा मीडिया के प्रभाव से समाज के प्रत्येक वर्ग का इन्सान अपने आपको कहीं न कहीं जकडा, ग्रसीत, फंसा हुआ महसूस कर रहा है। उसका जीवन जटिल हो गया है। ऐसे में परम्परा, इतिहास और विचारधारा को भूला नहीं या रहा है और नये बाजारवाद भूमण्डलीकरण आदि को वह आसानी से अपना भी नहीं पा रहा है। इस दोहरे अभिशाप से वह अपनी आस्था और विश्वास को खो बेठने के डर से

ग्रसीत है । अस्तीत्वहीन दुनिया में अपने अस्तित्व की पहचान एक गर्व के रुप में ही हो सकती हैं। श्रीकांत वर्मा इस बात को अपनी कविता में कुछ यूं बयां करते हैं–

''मैं एक अदृश्य दुनिया में जी रहा हूँ।
और अपने को टटोल सकता हूं
दावे के साथ
मैं एक साथ ही मूर्दा भी हूं और ऊदविलाव भी।
मैं एक बासी दुनिया की मीट्टी में
दबा हुआ अपने को खोद रहा हूं।''[२]

बाज़ारीकरण, उदारीकरण ने समाज–संस्कृति को प्रभावित किया हैं। इन नई तरह की स्थितियों ने समकालीन हिन्दी कवियों को एक नये तरीके से सोचने, लिखने पर मजबूर किया। मशीनीकरण, औद्योगिकरण, बाजारीकरण, भूमण्डलीकरण, कम्प्यूटरीकरण के कारण देश में अनेक रुपों में विकास हुआ। पर इस विकास के पीछे जिन लोगों को बेघर किया जाता है, जिन्हे अपनी जमीन से उखाड दिया जाता है ऐसे विस्थापितों पर न तो सरकार सोचती है न समाज। परिणाम स्वरुप एक बडी संख्या दर–दर भटकने पर मजबूर हो गई है। कहीं मेट्रो ट्रेन का प्रोजेक्ट तो कहीं बडे–बडे मोल बनाने के लिए कहीं किसानों की जमीन तो कहीं गरीबों की झोंपडियां तोड दी जाती है। उनके पुनर्वास के लिए सोचने का समय तक नहीं हैं पर उनको निर्वासित, विस्थापित करने मे एक मिनिट का वक्त भी नहीं गँवाते सरकारी नूमाईंदे। ऐ इस भयानक औद्योगिकीकरण व विकासीकरण की स्थिति में पीसते वर्ग का दर्द समकालीन कवियों ने ह्रदय को रुला देनेवाला चित्र प्रस्तुत किया है–

''मैं पहनता हूँ
अपने ही देश के जूते
पर यह कल्पना करता हूँ
अपनी धरती पर चल रहा हूँ
जो मुझे कहीं भी ले जा सकते हैं
सिर्फ वहाँ नहीं
जहाँ से हमें निकाला गया।''[३]

विकास के नाम पर तो विस्थापन होता ही है, पर धर्म के नाम पर भी इनको अपनी जमीं से हटाया जा रहा हैं और इसे साम्प्रदायिकता की आड में अंजाम दिया जाता है। इस संदर्भ में बशीर अतहर ने अपनी मार्मिक संवेदना को व्यक्त करते हुए लिखा–

''मेरा क्या होगा
तुम्हें लगता है
तुम्हारे विस्थापन पर खुश हुआ था मैं
तुम्हें यही लगता है
कि हडप कर तुम्हारी घर–गृहस्थी
मालामाल हो जाने का स्वप्न था मेरा... ।''[४]

मानवीय संवेदना और अ–मानवीय सत्ता के बीच गहरी खाई आज के उत्तर–आधुनिक दौर की सबसे बडी त्रासदी है। यह अमानवीय सत्ता विदेशी नहीं है। यहाँ किसी उपनिवेशवादी ताकत के साथ या किसी राजा से नहीं, बल्कि अपनी ही चुनी हुई सरकार से, समाज से, अपनी ही शर्तो पर, अपनी ही जमीन के लिए अपने ही लोगों से संघर्ष करना है। अलगाव–बोघ उत्तर–आधुनिकता की देन ही कहा जायगा। अग्निशेखर ने इस अलगाव–बोध से त्रस्त होकर लिखा–

''हमारी एक दूसरे से सीधे
देखने से कतराती हैं आँखें
हम एक दूसरे को नहीं चाहते हैं
पहचान पाना इस शहर में
दोनों हैं लहुलुहान
और पसीने से तर
फिर भी ठिठक जाते हैं पाँव
की पूछें, कैसे हो भाई।''[५]

अराजकता भी उत्तर आधुनिकतावादी विचार धारा से जन्मा एक नया राजनीतिक विध्वंश है। पराजय, हत्या, खोखलापन, सडांघ, मवाद, घाव, ऊब, थकान, टूटन, संत्रास के कारण व्यक्ति की एक दूसरे के प्रति सामाजिक दायित्व–भावना का लोप हो गया। वह आत्मग्रस्त बनकर बाहरी संसार के संघर्ष से विरत हो गया। अन्याय से लडने से पहले ही वह खूद को अन्यायी मानकर पराजी हो चूका है और अपने समय के आगे लाचार, विवश बनकर यथास्थितिवादी बन गया है। यथा–

''हमारी परिणति न तो आत्महत्या है
न जंग लगी हुई आरती
मुरदा इतिहास की पोली मीनार में
हम दो चुम्बकों के बीच
स्थिर हैं
बुरा लगे यों भी तो। बाहर घसीटकर
हमको निर्वात में। उछाल दो
जितना कुछ ऊष सकें ऊष लिए
हमें अब किसी भी व्यवस्था में डाल दो।''[६]

बिम्बवाद, प्रभाववाद और अतियर्थाथवाद उत्तर–आधुनिकता की पैटर्न पर ही साहित्य की विभिन्न विद्याओं में आए। अत्याधुनिक जीवन–मूल्यों के विघटन, संघर्ष और क्षोभ को सशक्त काव्य–बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कवि सचेत है अपने समय से। उसे पता है कि इस अमानवीय व अन्धकार भरे युग में उसे किस प्रकार अपने को टिकाए रखना है यथा–

''यह युग एक अन्धा समुद्र है
चारों ओर से पहाडों से घिरा हुआ
और दर्रों से
ओर गुफाओं से

उमडते हुए भयानक तूफान चारों ओर से
उसे मथ रहे हैं... ।"[७]

समकालीन कवियों ने उत्तर-आधुनिकता के तहत नष्ट हुई मानवीय मूल्यों व जीवन दृष्टि को सीधा-सीधा काव्य का वर्ण्य बनाया। अपने युग-परिवेश के प्रति उनकी दृष्टि सजग व सतर्क रही। इसीलिए घूमिल जैसे सजग कवि को निराशावादी समाज को कहना पडा कि-

"यहां आओ
मेरे पास आओ
मुझे छुओ।
मुझे छुओ। मेरे साथ चलो
मेरा यकीन करो
इस दलदल से बाहर निकलो
सुनों !
तुम चाहें जिसे चुनो
मगर इसे नहीं। इसे बदलो।"[८]

अत्याधुनिक टेक्नोलोंजी की बजह से आज पूरा मानव समाज सिमट गया है। उसे घंटों मोबाईल पर चेट करने का वक्त है मगर अपने ही घर में रहनेवालों से दो मीनिट भर बात करने की फूरर्सत नहीं है। ऊपर से भरा पुरा मनुष्य बाजारवाद और टेक्नोलोंजी के कारण आंतरिक खोखला हो गया है। जीन्दगी उसके लिए विवशता होती जा रही हैं। समकालीन कवि चंद्रेश गुप्त इसीलिए लिखते है-

"ऊपर से भरे पूरे
भीतर से खाली
जीने की शर्त और ऐसी मजबूरी
क्षण जीवी लगते हैं
सारे अध्याय
पल भर का परिवर्तन, कितना निरुपाय
कथ्यों से भरे पूरे, तथ्यों से खाली
हर कोशिश बढ़ गई और अधिक दूरी।"[९]

राजनेताओंने उत्तर-आधुनिकता को जनमानस में हावी हो जाने में ज्यादा भाग निभाया है। पर समकालीन कवियों ने समाज को गंदी राजनीति से दूर रहकर उनकी चालों में न फँसने का आह्वान भी किया। फैशन व बाजारवाद में फँसकर उपभोक्तावादी संस्कृति में फँसती युवापीढी को भी सतर्क किया है यथा-

"यश है या न वैभव है, मान है न सरमाया;
जितना ही दौडा तू उतना हू भरमाया।
प्रभुता का शरण बिम्ब केवल मृगतृष्णा है।"[१०]

संक्षेप में कहें तो उत्तर आधुनिकता के प्रभावक रुपों में वैश्वीकरण, बाजारीकरण, औद्योगीकरण, भूमण्डलीकरण से उपभोक्तावादी उदारीकरण, मीडिया व विज्ञापन की भद्री संस्कृतिकरण वर्गरह है। जिनसे न समाज बच सकता है न साहित्य। बल्कि इससे जूडने के अलावा दूसरा इलाज नहीं है। खुले बाजार की रणनीती, संचार माध्यमों, टेक्नोलोंजी और इलेक्ट्रोनिक्स मीडिया से मध्यमवर्ग, आम आदमी प्रभावीत हुआ है। इनसे बेबस आम आदमी के दर्द पीडा को समकालीन कविता में दर्शाया गया है। प्रचार माध्यमों, विज्ञापनों की दुनिया में आज आम आदमी ब्राण्ड की तरह हो गया है। अवास्तविकता को वास्तविक बनाने के लिए उपभोक्तावादी संकाप अभिनेता-अभिनेत्रीयों को माध्यम बना रहे है। समाज का हर तबका पैसा कमाने की होड में प्रचार माध्यमों की चपेट में आकर नग्न प्रदर्शन पर उतर आया है। समकारीन कवियों ने अपनी अपनी तरह से मानवीय सभ्यता, संस्कृति और संवेदना पर गहरा घाव करनेवाले भूमण्डलीकरण, बाजारवाद, औद्योगिकरण, टेक्नोलोंजीकरण के आक्रमण और मनुष्य के ध्वसी होने अंत:करण को जाग्रत करने की उन्हें एक नाम देने की कोशिश की है जो कि, उनकी युग बोध व परिवेश सापेक्षता भी निभाई हैं।

सन्दर्भ सूचि

1. जाने क्या बात कहीं-रमेशचंद्र शर्मा, हिन्दी साहित्य परिचय, सं.-१९९४, पृ-भूमिका से सादर समाद्धृत
2. कविता के सौ बरस-सं.-लीलाधर मंडलोई, प्र.-शिल्वायन-दिल्ली, सं.-२००१, पृ-३६६
3. हिन्दी साहित्य में युगीन बोध- सं.-शैलजा भारद्वाज, प्र.-चिन्तन प्रकाशन, कानपूर, सं.-२०११, पृ-२६
4. वही, पृ-२८
5. कविता के सौ बरस, सं.-लीलाधर मंडलोई- पृ-३६६
6. दूसरे प्रतिक्षेत्र, पृ-५३
7. नयी कविता के बाद, डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी, प्र.-पुस्तक संस्थान, सं.-१९७४, पृ-६५
8. हिन्दी साहित्य में युगीन-बोध, सं.-शैलजा भारद्वाज, चिन्तन प्रकाशन, पृ-८८
9. दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में घूमिल-कुमार कृष्ण, प्र.-साहित्य निधि-दिल्ली, सं.-१९८७, पृ-१०३
10. वहीं, पृ-५७